दसवाँ अध्याय

उत्तर भारत में साम्राज्य के लिए संघर्ष-1

(लगभग 1400 ई. – 1525 ई.)

दिल्ली सल्तनत की बढ़ती हुई कमज़ोरी, 1398 ई. में दिल्ली पर तैमूर का हमला और हमले से डरकर तुगलक सुल्तान का राजधानी छोड़कर भाग खड़ा होना, इन बातों से उत्साहित होकर कई सूबेदारों और सल्तनत की अधीनता में स्वायत्त शासन का उपयोग करने वाले छोटे-छोटे राज्यों ने अपनी आजादी की घोषणा कर दी। दकनी राज्यों के अलावा पूरब में बंगाल और पश्चिम में सिंध तथा मुल्तान दिल्ली सल्तनत से अपना नाता तोड़ने में सबसे आगे थे। शीघ्र ही गुजरात, मालवा और जौनपुर (पूर्वी उत्तर प्रदेश) के सूबेदारों ने भी अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। अजमेर के मुसलमान सूबेदार को निकाल बाहर किया गया और उसी के साथ राजपूताना के विभिन्न राज्य भी आज़ाद हो गए।

धीरे-धीरे विभिन्न क्षेत्रों के राज्यों के बीच एक निश्चित ढंग का शक्ति-संतुलन कायम हो गया। पश्चिम में मालवा, गुजरात और मेवाड़ एक-दूसरे की शक्ति की अभिवृद्धि पर अंकुश रखने का काम करने लगे। बंगाल के सामने उड़ीसा के गजपति शासकों और जौनपुर की बाधा थी। लगभग पंद्रहवीं सदी के मध्य से दिल्ली में लोदियों की शक्ति के उदय के फलस्वरूप गंगा-यमुना दोआब के स्वामित्व के लिए उनके और जौनपुर के शासकों के बीच संघर्ष छिड़ गया। पंद्रहवीं सदी के अंत में लोदी सुल्तान द्वारा जौनपुर के अपनी सल्तनत में मिला लिए जाने के बाद परिस्थिति बदलने लगी। इसी विजय के बाद लोदियों ने पूर्वी राजस्थान और मालवा की ओर अपनी सत्ता का विस्तार करना आरंभ कर दिया। इन्हीं दिनों आंतरिक कारणों से मालवा बिखरने लगा और उस पर कब्ज़ा करने के लिए गुजरात, मेवाड़ और लोदियों की प्रतिद्वंद्विता में तीव्रता आई। लग रहा था कि इस ज़ोर-आजमाई में जीतने वाला पूरे उत्तर भारत पर राज करेगा। इस प्रकार मालवा के नियंत्रण के लिए चलने वाला संघर्ष उत्तर भारत के स्वामित्व के लिए चल रही ज़ोर-आजमाई का अखाड़ा बन गया। शायद इसी तीव्र प्रतिद्वंद्विता के कारण राणा साँगा ने बाबर को हमला करने के लिए आमंत्रित किया था। उसे आशा थी कि लोदियों की सत्ता के खात्मे से मेवाड़ उस क्षेत्र की सबसे प्रबल शक्ति बन जाएगा।

पूर्वी भारत : बंगाल, असम और उड़ीसा

जैसा कि हम देख चुके हैं, अपनी दूरी और जलवायु के कारण बंगाल दिल्ली के नियंत्रण से बहुधा मुक्त ही रहा था। इसकी एक और भी वजह थी - बंगाल का संचार मुख्य रूप से जलमार्गों पर निर्भर था और तुर्क शासक ऐसे मार्गों से अपरिचित थे। जब मुहम्मद तुगलक सल्तनत के विभिन्न भागों में भड़क रहे विद्रोहों को दबाने में व्यस्त था, उसी समय 1338 ई. में बंगाल फिर दिल्ली से स्वतंत्र हो गया था। चार साल बाद इलियास खाँ नामक एक अमीर ने लखनौती और सोनारगाँव पर कब्ज़ा कर लिया और सुल्तान शम्सुद्दीन इलियास खाँ की उपाधि धारण करके बंगाल की गद्दी पर आसीन हो गया। उसने पश्चिम में अपने राज्य का विस्तार तिरहुत, चंपारन तथा गोरखपुर तक किया और अंत में बनारस पर भी अधिकार कर लिया, अतः फ़िरोज़ तुगलक उस पर आक्रमण करने को मजबूर हो गया। इलियास खाँ के चंपारन और गोरखपुर के नवविजित इलाकों से होते हुए फ़िरोज़ तुगलक ने बंगाल पहुँच कर उसकी राजधानी पंडुआ पर कब्ज़ा कर लिया। इलिययास खाँ को एकदाला के किले में शरण लेनी पड़ी। दो महीने तक घेरा डाले रहने के बाद फ़िरोज़ तुगलक ने भाग खड़े होने का दिखावा करके इलियास खाँ को किले से बाहर आने को प्रेरित किया। लेकिन जब वह बाहर आया तो दोनों फौज़ों में जमकर लड़ाई हुई जिसमें इलियास खाँ पराजित हुआ। लेकिन वह एक बार फिर एकदाला के किले में जा बैठा। अंत में दोनों में मित्रता की एक संधि हुई जिसके अनुसार बिहार से होकर बहने वाली कोसी नदी को दोनों राज्यों की सीमा निर्धारित किया गया। यद्यपि इलियास खाँ और फ़िरोज़ के बीच भेंट-उपहारों का आदान-प्रदान नियमित रूप से चलता रहा, परंतु इलियास खाँ किसी भी तरह से दिल्ली का मातहत नहीं था। दिल्ली के साथ अपने मैत्रीपूर्ण संबंधों का लाभ उठाकर इलियास खाँ ने कामरूप राज्य पर (आधुनिक असम में) अधिकार कर लिया।

इलियास खाँ लोकप्रिय राजा था और उसे कई उपलब्धियों का श्रेय प्राप्त है। जब फ़िरोज़ तुगलक पंडुआ में था उस समय उसने अमीरों, उलेमाओं और अन्य सुपात्रों को ज़मीन और जागीरें देकर नगर के निवासियों को अपने पक्ष में करने की कोशिश की। लेकिन फ़िरोज़ की कोशिश नाकाम हो गई। इलियास खाँ के खिलाफ़ फ़िरोज़ की विफलता का एक कारण शायद इलियास की लोकप्रियता रही होगी।

जब इलियास की मृत्यु के बाद उसका बेटा सिकंदर गद्दी पर बैठा तो फ़िरोज़ तुगलक ने एक बार फिर बंगाल पर आक्रमण कर दिया। सिकंदर अपने पिता की युक्ति से काम लेते हुए एकदाला किले में जा बैठा। फ़िरोज़ एक बार फिर किले पर कब्ज़ा करने में नाकाम होकर वापस लौट गया। इसके बाद लगभग अगले 200 साल तक बंगाल के साथ दिल्ली ने कोई छेड़छाड़ नहीं की और जब मुगलों ने दिल्ली में अपनी सत्ता भली भाँति प्रतिष्ठित कर ली तब 1538 ई. में बंगाल पर आक्रमण किया गया, लेकिन आक्रमणकारी मुगल नहीं, बल्कि उनका शत्रु शेरशाह था। इस बीच बंगाल में कई राजवंशों के त्वरित परिवर्तन से वहाँ के आम लोगों के शांतिपूर्ण जीवन-प्रवाह में कोई बाधा नहीं पड़ी।

इलियास खाँ के राजवंश का सबसे प्रसिद्ध

सुल्तान गियासुद्दीन आजमशाह (1389 ई. - 1409 ई.) था। वह अपनी न्यायप्रियता के लिए विख्यात था। कहते हैं, एक बार कुसंयोग से उसने एक विधवा के बेटे को मार दिया। विधवा ने काजी से फरियाद की। सुल्तान को अदालत में तलब किया गया तो वह विनम्रतापूर्वक हाज़िर हो गया और काजी ने उस पर जो जुर्माना किया वह उसने अदा कर दिया। मुकदमे के अंत में उसने काजी से कहा कि अगर वह अपना फर्ज निभाने में चूक कर जाता तो सुल्तान उसका सिर कलम कर देता।

अपने समय के प्रसिद्ध विद्वानों से आजमशाह का घनिष्ठ संबंध था। इनमें शिराज का फारसी शायर हाफिज़ भी था। उसने चीनियों के साथ मित्रतापूर्ण संबंध स्थापित किया। चीनी सम्राट ने उसके दूत का हार्दिक स्वागत किया। 1400 ई. में उसने सुल्तान और उसकी पत्नी के लिए उपहारों के साथ अपना दूत सुल्तान के पास भेजा, जिसकी मारफत उसने चीन को बौद्ध भिक्षु भेजने का भी अनुरोध किया। सुल्तान ने उसका अनुरोध पूरा किया। प्रसंगवश इससे यह भी मालूम होता है कि उस समय तक बौद्ध धर्म बंगाल में पूरे तौर पर मिट नहीं पाया था।

चीन के साथ नए सिरे से संपर्क स्थापित हो जाने से समुद्री मार्ग से होने वाले बंगाल के व्यापार को उत्तेजन मिला। चटगाँव चीन के साथ व्यापार का एक फूलता-फलता बंदरगाह बन गया। वहाँ से चीनी माल का दूसरे देशों को पुनर्निर्यात किया जाने लगा।

इस काल में राजा गणेश के अधीन हिंदू शासन का भी एक छोटा-सा दौर आया, लेकिन गणेश के बेटों ने मुसलमान बनकर ही शासन करना पसंद किया।

बंगाल के सुल्तानों ने पंडुआ और गौड़ की अपनी दोनों राजधानियों को शानदार इमारतों से सजाया। इन इमारतों की अपनी एक अलग शैली थी जो दिल्ली में विकसित शैली से भिन्न थी। इनके निर्माण में ईंटों और पत्थरों - दोनों का उपयोग किया गया। बंगाल के सुल्तानों ने बंगला भाषा को भी प्रश्रय दिया। ऐसा प्रश्रय पानेवालों में श्रीकृष्ण-विजय का संकलनकर्ता मालाधर बसु भी था। उसे गुणराज खाँ की उपाधि दी गई। उसके पुत्र को सत्यराज खाँ की उपाधि से सम्मानित किया गया। लेकिन बंगला भाषा के विकास का सबसे महत्वपूर्ण काल अलाउद्दीन हुसैन का शासन काल (1493 ई. - 1519 ई.) था। उस काल के कुछ प्रसिद्ध बंगाली लेखक उसी के शासन में फूले-फले।

अलाउद्दीन हुसैन के प्रबुद्ध शासन के अधीन विचाराधीन काल में बंगाल के इतिहास के एक शानदार दौर की शुरुआत हुई सुल्तान कानून और व्यवस्था का बहुत ध्यान रखता था और उसने उदार नीति अपनाते हुए हिंदुओं को ऊँचे-ऊँचे पद प्रदान किए। उदाहरण के लिए उसका वज़ीर एक मेधावी हिंदू था। उसका आला हकीम, अंगरक्षक दल का प्रधान और खानों का मुख्य अधिकारी - सबके-सब हिंदू थे।

धर्मात्मा वैष्णवों के रूप में विख्यात दो भाई - रूप और सनातन-ऊँचे पदों पर आसीन थे। उनमें से एक तो सुल्तान का निजी सचिव था। कहते हैं, सुल्तान महान वैष्णव संत चैतन्य का बहुत आदर करता था।

मुहम्मद बिन बख्तियार खलजी के समय से ही बंगाल के मुसलमान शासक आधुनिक असम की ब्रह्मपुत्र घाटी पर अधिकार करने के लिए प्रयत्नशील रहे थे, परंतु उन्हें इस अज्ञात प्रदेश में एक के बाद एक अनेक विनाशकारी पराजयों का मुँह देखना पड़ा था। बंगाल के स्वतंत्र सुल्तानों ने अपने पूर्ववर्ती शासकों के चरणचिह्नों पर चलने का प्रयास किया। उन दिनों उत्तर बंगाल और असम में आपस में झगड़ते रहने वाले दो राज्य थे। पश्चिम में कामता (जिसे उस युग के लेखक कामरूप कहते थे) और पूरब में अहोम राज्य था। अहोम उत्तर बर्मा के मंगोली मूल के एक कबीले के लोग थे। तेरहवीं सदी में उन्होंने असम में एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना करने में सफलता प्राप्त की थी। कालांतर से वे लोग हिंदू संस्कृति के रंग में रंग गए थे। असम नाम अहोम से ही व्युत्पन्न हुआ है।

इलियास शाह ने कामता पर आक्रमण किया और मालूम होता है वह गुवाहाटी तक पहुँच गया। लेकिन वह इस क्षेत्र पर अपना अधिकार कायम नहीं रख पाया और करातोया नदी को बंगाल की उत्तर-पूर्वी सीमा मान लिया गया। इलियास शाह के कुछ उत्तराधिकारियों ने लूटपाट के इरादे से कुछ हमले अवश्य किए, लेकिन इससे स्थिति में कोई अंतर नहीं पड़ा। कामता के शासकों ने धीरे-धीरे करातोया के पूर्वी किनारे के अपने कई इलाकों पर फिर से अधिकार कर लिया। उन्होंने अहोमों से भी लोहा लिया। लेकिन अपने दो पड़ोसियों को अपना शत्रु बनाकर उन्होंने अपने विनाश का रास्ता खुद साफ कर लिया। अलाउद्दीन हुसैन शाह ने उन पर फिर आक्रमण किया, जिसमें उसे अहोमों से भी सहायता मिली। उसने कामतापुर नगर (आधुनिक कूच बिहार में) को तहस-नहस कर डाला और कामता को अपने राज्य में मिला लिया। सुल्तान ने अपने एक बेटे को वहाँ का सूबेदार नियुक्त किया और अफ़गानों की एक बस्ती भी बसा दी। बाद में उसके एक उत्तराधिकारी - शायद अलाउद्दीन हुसैन के बेटे नुसरत शाह ने अहोम राज्य पर हमला किया, लेकिन निष्फल रहा और उसे भारी क्षति उठानी पड़ी। इस समय पूर्वी ब्रह्मपुत्र घाटी सुहुंगमुंग के अधीन थी। सुहुंगमुंग को अहोम शासकों में सबसे बड़ा माना जाता है उसने अपना नाम बदलकर स्वर्ग नारायण रखा। यह अहोम लोगों के तेज़ी से हो रहे हिंदूकरण का सूचक था। उसने मुसलमानों के आक्रमण को ही विफल नहीं किया, बल्कि अपने राज्य का चतुर्दिक विस्तार भी किया। वैष्णव सुधारक शंकरदेव उसका समकालीन था। उसने इस क्षेत्र में वैष्णव धर्म के प्रचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

बंगाल के सुल्तानों ने चटगाँव और अराकान के एक हिस्से पर भी अधिकार करने की कोशिश की। सुल्तान हुसैन शाह ने न केवल अराकान के राजा से चटगाँव छीन लिया, बल्कि टिपेरा को भी उसके शासक से हथिया लिया।

बंगाल के शासकों को उड़ीसा से भी दो-दो हाथ करने पड़े। बंगाल पर दिल्ली सल्तनत के शासन के दौर में उड़ीसा के गंग राजाओं ने राधा (दक्षिण बंगाल) पर हमले किए थे और लखनौती को भी जीतने की कोशिश की थी। लेकिन उनके हमलों को नाकाम कर दिया गया था। अपने शासन-काल के आरंभ में इलियास शाह ने जाजनगर (उड़ीसा) पर आक्रमण किया। कहते हैं, सारे प्रति-रोधों पर विजय प्राप्त करता हुआ वह चिल्का झील तक पहुँच गया और वहाँ से बहुत-सा लूट का माल

लेकर लौटा। इस मार्ग में बड़ी तादाद में हाथी भी शामिल थे। एक-दो साल बाद 1360 ई. में अपने बंगाल अभियान से लौटते हुए फ़िरोज़ तुगलक ने भी उड़ीसा पर आक्रमण किया। उसने राजधानी पर कब्ज़ा कर लिया, बहुत-से लोगों को मार डाला और प्रसिद्ध जगन्नाथ मंदिर की पवित्रता भंग की। इन दो आक्रमणों के फलस्वरूप शासक वंश की प्रतिष्ठा धूल में मिल गई। कालांतर से गजपति राजवंश नामक एक नए शासक घराने का उदय हुआ। गजपति शासनकाल उड़ीसा के इतिहास का उत्कर्ष काल है। इस वंश के शासक महान निर्माता और अदम्य योद्धा थे। दक्षिण में कर्नाटक की ओर उड़ीसा के शासन का विस्तार करने का श्रेय मुख्य रूप से गजपति शासकों को ही प्राप्त है। जैसा कि हम देख चुके हैं, उनके इस दक्षिणोन्मुख विस्तार के फलस्वरूप उनकी टक्कर विजयनगर साम्राज्य, रेड्डिडयों के राज्य तथा बहमनी सल्तनत से हुई। गजपति शासकों के दक्षिण की ओर रुख करने का एक कारण शायद उनका यह एहसास था कि बंगाल के सुल्तान इतने शक्तिशाली हैं कि बंगाल- उड़ीसा सीमा से उन्हें पीछे ढकेलना कठिन है। लेकिन उड़ीसा के शासक दक्षिण के अपने विजित प्रदेशों पर अधिक समय तक अधिकार नहीं रख पाए। इसका प्रमुख कारण विजयनगर और बहमनी राज्यों की शक्ति और सामर्थ्य थी।

इस समय बंगाल में उड़ीसा की सीमा सरस्वती नदी थी जिससे होकर गंगा का काफी पानी बहता था। इस प्रकार मिदनापुर जिले का एक बड़ा हिस्सा तथा हुगली जिले का भी कुछ भाग उड़ीसा राज्य में शामिल था। इस बात के कुछ प्रमाण मिलते हैं कि उड़ीसा के शासकों ने अपनी सत्ता भागीरथी तक फैलाने की कोशिश की, लेकिन उन्हें शीघ्र ही पीछे हटना पड़ा। बंगाल के कुछ सुल्तानों ने, जिनमें अलाउद्दीन हुसैन शाह भी शामिल था, उड़ीसा में पुरी और कटक तक के प्रदेशों पर आक्रमण किए। बंगाल और उड़ीसा के बीच सीमा पर भी जब-जब लड़ाइयाँ चलती रहीं। परंतु बंगाल के शासक उड़ीसा के शासकों को उनकी सीमा से पीछे हटाने या सरस्वती से आगे के किसी प्रदेश पर अधिकार करने में सफल नहीं हो सके। उड़ीसा के शासक एक ही साथ सुदूर उत्तर-पूर्व बंगाल और सुदूर दक्षिण कर्नाटक में सफलतापूर्वक संघर्ष कर पाए, यह उनकी शक्ति और पराक्रम का द्योतक है।

पश्चिमी भारत : गुजरात, मालवा और मेवाड़

अपनी उत्कृष्ट दस्तकारियों, फूलते-फलते समुद्री बंदरगाहों तथा उपजाऊ धरती के कारण गुजरात दिल्ली सल्तनत के सर्वाधिक समृद्ध सूबों में से था। फ़िरोज़ तुगलक के अधीन गुजरात पर एक सौम्य सूबेदार का शासन था जिसने (फरिश्ता के अनुसार) हिंदू धर्म को प्रोत्साहन दिया और इस तरह मूर्तिपूजा को दबाने की बजाय उसे बढ़ावा दिया। उसके बाद ज़फर खाँ सूबेदार बना। उसका पिता मूलतः एक साधारण राजपूत था, लेकिन उसने बाद में इस्लाम कबूल करके फ़िरोज़ तुगलक से अपनी बहन का विवाह कर दिया था। दिल्ली पर तैमूर के हमले के बाद गुजरात और मालवा - दोनों नाममात्र को ही दिल्ली के अधीन रह गए। वास्तव में वे हर तरह से स्वतंत्र हो गए थे। 1407 ई. में ज़फर खाँ ने दिल्ली की नाममात्र की भी अधीनता का त्याग करके स्वयं को स्वतंत्र घोषित

कर दिया और मुज़फ्फर शाह के नए नाम से गुजरात की गद्दी पर बैठ गया।

परंतु गुजरात राज्य का वास्तविक संस्थापक मुज़फ्फरशाह का पौत्र प्रथम अहमदशाह (1411ई. -43 ई.) था। अपने लंबे शासनकाल में उसने अमीरों पर नियंत्रण स्थापित किया, प्रशासन को सुस्थित आधार प्रदान किया और राज्य का विस्तार करने के साथ ही उसे सुदृढ़ भी बनाया। वह राजधानी को पाटन से हटाकर अहमदाबाद के नए नगर में ले गया जिसका शिलान्यास उसने 1413 ई. में किया था। वह एक महान निर्माता था। उसने नए नगर को शानदार महलों, बाज़ारों, मस्जिदों और मदरसों से सज्जित किया। उसने गुजरात की समृद्ध जैन वास्तु-परंपरा से काफी कुछ ग्रहण करके स्थापत्य की एक ऐसी शैली का विकास किया जो दिल्ली की शैली से बहुत भिन्न थी। क्षीण कंगूरे, पत्थरों में की गई सुंदर नक्काशी, अलंकृत दीवारगीरें आदि इस शैली की कुछ खास विशेषताएँ हैं। अहमदाबाद की जामा मस्जिद तथा तीन-दरवाज़ा इस शैली के स्थापत्य के उसके शासनकाल के उत्कृष्ट नमूने हैं। अहमदशाह ने सौराष्ट्र क्षेत्र में तथा गुजरात-राजस्थान सीमा पर स्थित राजपूत राज्यों पर नियंत्रण स्थापित करने का प्रयत्न किया। सौराष्ट्र में उसने गिरनार के किले पर कब्ज़ा कर लिया, लेकिन वहाँ के राजा के कर अदा कर देने का वादा करने पर उसे किला वापस कर दिया। उसके बाद उसने प्रसिद्ध हिंदू तीर्थस्थल सिद्धपुर पर आक्रमण किया और वहाँ अनेक मंदिरों को मिट्टी में मिला दिया। उसने गुजरात के हिंदुओं पर जज़िया लगाया जो वहाँ पहले कभी नहीं लगाया गया था। इस सबके कारण कई मध्यकालीन इतिहासकारों ने काफ़िरों के शत्रु के रूप में उसकी प्रशंसा की है लेकिन अनेक आधुनिक इतिहासकारों ने उसे धर्मांध बताया है। सच्चाई अधिक जटिल मालूम होती है। अहमदशाह ने हिंदू मंदिरों के विनाश का आदेश देकर तो धर्मांधता का व्यवहार किया, लेकिन बहुत-से हिंदुओं को शासन में स्थान देने में उसने कोई संकोच नहीं किया। बनिया या व्यापारी जाति के हिंदू मानिकचंद और मोतीचंद उसके मंत्री थे। न्यायप्रिय तो वह इतना था कि उसने अपने दामाद को हत्या के अपराध में सरे-बाज़ार मृत्यु दंड दिया। उसने हिंदू शासकों के खिलाफ़ लड़ाई की, लेकिन उस समय के मुसलमान शासकों के खिलाफ़, खासकर मालवा के मुसलमान शासकों के विरुद्ध वह कुछ कम नहीं लड़ा। उसने इडर के प्रबल गढ़ को जीता और झालावार, बूँदी, डूँगरपुर आदि राजपूत राज्यों पर अपना नियंत्रण स्थापित किया।

आरंभ से ही गुजरात और मालवा एक-दूसरे के कट्टर शत्रु थे और लगभग हर मौके पर वे एक-दूसरे के विरोधी खेमे में होते थे।

मुज़फ्फरशाह ने मालवा के शासक हुशंग शाह को पराजित करके बंदी बना लिया था। लेकिन मालवा पर अपना काबू बनाए रखना मुश्किल पाकर उसने कुछ साल बाद हुशंग शाह को छोड़ दिया और उसका राज्य उसे वापस दे दिया। मगर इससे मालवा के शासकों का घाव भरना तो दूर रहा, उल्टे वे गुजरात की शक्ति से बहुत आशंकित रहने लगे। वे बराबर गुजरात को कमज़ोर करने की ताक में रहते थे। गुजरात के असंतुष्ट तत्वों को वे हमेशा बढ़ावा देते थे - चाहे वे विद्रोही अमीर हों या गुजरात के हिंदू राजा। गुजरात के शासकों

ने मालवा की गद्दी पर अपनी पसंद के आदमी को बैठाकर इसका प्रतिकार करने की कोशिश की। इस तीव्र प्रतिद्वंद्विता ने दोनों राज्यों को कमज़ोर कर दिया और उनके लिए उत्तर भारत की राजनीति में कोई बड़ी भूमिका निभा पाना असंभव हो गया।

महमूद बेगड़ा

अहमदशाह के उत्तराधिकारियों ने अपने राज्य का विस्तार करने और उसे सुदृढ़ बनाने की उसकी नीति को जारी रखा। गुजरात का सबसे प्रसिद्ध सुल्तान महमूद बेगड़ा था। उसने 50 वर्षों से अधिक काल तक (1459 ई. - 1511 ई.) गुजरात पर शासन किया। उसे बेगड़ा इसलिए कहा जाता था कि उसने दो अत्यंत शक्तिशाली गढ़ों को -सौराष्ट्र (अब जूनागढ़) में गिरनार और दक्षिण गुजरात में चांपानेर को - जीता था।[1] गिरनार का शासक नियमित रूप से कर चुकाता रहा था, परंतु सौराष्ट्र पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित करने की अपनी नीति के अंग के रूप में महमूद ने गिरनार को अपने राज्य में मिला लेने का फैसला किया। सौराष्ट्र काफी समृद्ध और खुशहाल प्रदेश था। उसकी मिट्टी बहुत उपजाऊ थी तथा वहाँ कई बंदरगाह भी थे। दुर्भाग्यवश यह क्षेत्र डाकुओं और जल-दस्युओं से भी ग्रस्त था। ये दस्यु व्यापार और जहाज़रानी के लिए भारी मुसीबत थे। गिरनार के शक्तिशाली गढ़ को न केवल सौराष्ट्र के प्रशासन के सुचारु संचालन के लिए, बल्कि सिंध के खिलाफ सैनिक कार्रवाई के आधार के रूप में भी बहुत उपयुक्त समझा गया। महमूद बेगड़ा ने एक बहुत बड़ी फौज़ लेकर गिरनार पर घेरा डाल दिया। यद्यपि राजा के पास किले में कुछेक तोपें ही थीं, फिर भी उसने बहादुरी से मुकाबला किया, लेकिन अंत में परास्त हो गया। कहते हैं, गिरनार के अभेद्य दुर्ग के पतन के पीछे राजद्रोह का हाथ था। राजा ने कामदार (मंत्री अभिकर्ता) की पत्नी छीन ली थी और उसी ने चुपचाप किले के पतन की योजना बनाई थी। किले के पतन के बाद राजा ने इस्लाम कबूल कर लिया और उसे सुल्तान की सेवा में स्थान दे दिया गया। सुल्तान ने पहाड़ी की तलहटी में मुस्तफाबाद नामक एक नए शहर की स्थापना की। वहाँ उसने कई शानदार इमारतें बनवाईं और अपने सभी अमीरों से भी इमारतें बनवाने को कहा। इस तरह मुस्तफाबाद गुजरात की दूसरी राजधानी बन गया।

आगे चलकर महमूद ने द्वारका पर हमला किया जिसका मुख्य कारण यह था कि वहाँ जल-दस्यु छिपे रहते थे जो मक्का जाने वाले हाजियों को लूट लेते थे। लेकिन इस हमले में वहाँ के प्रसिद्ध हिंदू मंदिरों को भी तोड़ा गया।

सुल्तान की योजना खानदेश और मालवा पर अधिकार करने की थी और इस दृष्टि से चांपानेर के किले का अपना सामरिक महत्व था। यद्यपि वहाँ का शासक गुजरात के गाल्हत था, तथापि मालवा से भी उसके नज़दीकी संबंध थे। बहादुर राजा और उसके अनुगामियों को जब किसी ओर से कोई मदद मिलने की उम्मीद नहीं रह गई तो जौहर व्रत का पालन करते हुए उन्होंने युद्ध में अपने प्राण उत्सर्ग कर दिए और इस तरह 1454 ई. में चांपानेर पर महमूद का अधिकार हो गया।

1 एक दूसरा मत यह है कि उसे बेगड़ा इसलिए कहा जाता था कि उसकी मूछें गाय (जिसे बेगड़ा कहा जाता है) के सींगों से मिलती थीं।

महमूद ने चांपानेर के निकट मुहम्मदबाद नामक एक नया शहर बसाया। इस नए शहर में उसने बहुत-से सुंदर बगीचे लगवाए और उसी को अपने आवास का मुख्य स्थान बना लिया।

चांपानेर अब ध्वस्त अवस्था में है। लेकिन जो इमारत अब भी ध्यान आकृष्ट करती है वह है वहाँ की जामा मस्जिद। उसके प्रांगण पर भी छादन है और उसमें जैन स्थापत्य के सिद्धांतों का भरपूर उपयोग किया गया है। इस काल में बनवाई गई दूसरी इमारतों में पत्थर पर इतनी सुंदर नक्काशी की गई है कि उसकी तुलना सोनार की कारीगरी से ही की जा सकती है।

महमूद बेगड़ा को पुर्तगालियों से भी संघर्ष करना पड़ा वे पश्चिम एशिया के देशों के साथ गुजरात के व्यापार में दखलंदाजी कर रहे थे। पुर्तगालियों की नौसैनिक ताकत को लगाम देने के लिए उसने मिस्र के शासक के साथ मित्रता की, लेकिन अपने इस मकसद में वह कामयाब नहीं हो सका। महमूद बेगड़ा के लंबे और शांतिपूर्ण शासन के दौरान वाणिज्य-व्यापार की तरक्की हुई। यात्रियों की सुविधा के लिए उसने कारवाँ, सरायें और मुसाफिरखाने बनवाए। सड़कें यातायात के लिए निरापद हो गई थीं, इसलिए व्यापारी बहुत खुश थे।

यद्यपि महमूद बेगड़ा ने कभी औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं की थी, तथापि विद्वानों की संगति से उसने काफी ज्ञान अर्जित किया था। उसके शासनकाल में बहुत-सी रचनाएँ अरबी से फारसी में अनूदित की गईं। उदयराज उसका दरबारी कवि था जो संस्कृत कविताएँ लिखता था।

महमूद बेगड़ा देखने में विचित्र था। उसकी खुली दाढ़ी उसकी कमर तक पहुँचती थी और मूछें इतनी लंबी थीं कि वह उन्हें लपेट कर अपने सिर पर बाँधता था। यात्री बारबोसा के अनुसार महमूद को बचपन से ही ज़हर दिया जाता रहा था जिससे यदि उसके हाथ पर कोई मक्खी बैठ जाती थी तो वह तुरंत सूज कर मर जाती थी।

महमूद अपनी तीव्र क्षुधा के लिए भी विख्यात था। कहते हैं, नाश्ते में वह एक कप शहद, एक कप मक्खन और सौ से डेढ़ सौ केले तक खा जाता था। वह प्रतिदिन 10 से 15 किलो भोजन चट कर जाता था और बताया जाता है कि रात में उसके तकिए के दोनों ओर मांस भरे समोसों की थालियाँ रख दी जाती थीं ताकि रात में नींद खुलने पर भूख लगे तो वह उसे शांत कर सके।

महमूद बेगड़ा के अधीन गुजरात राज्य अपने चरम विस्तार पर पहुँच गया। गुजरात उस काल के सबसे अधिक शक्तिशाली तथा सुप्रशासित राज्य के रूप में उभरा। आगे भी वह इतना शक्तिशाली रहा कि मुगल बादशाह हुमायूँ के लिए एक गंभीर चुनौती सिद्ध हुआ।

मालवा और मेवाड़

मालवा राज्य नर्मदा और ताप्ती नदियों के बीच ऊँचे पठार पर स्थित था। वह गुजरात को उत्तर भारत और उत्तर भारत को दक्षिण भारत से जोड़ने वाले मुख्य मार्गों पर पड़ता था। जब तक मालवा शक्तिशाली रहा तब तक वह गुजरात, मेवाड़ तथा बहमनी राज्य और दिल्ली के सोदी सुल्तान की महत्वाकांक्षाओं के लिए एक दीवार बना रहा। उत्तरी भारत की भौगोलिक-राजनीतिक स्थिति ऐसी थी कि इस क्षेत्र का जो भी शक्तिशाली

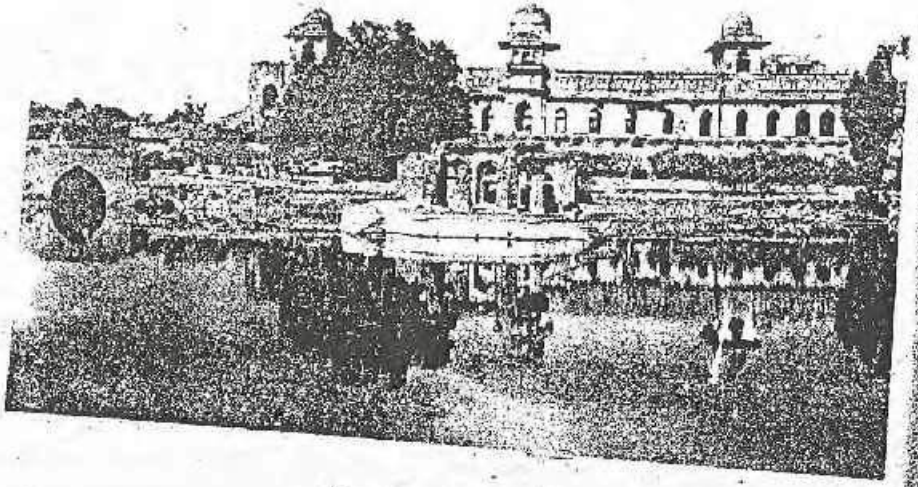

चित्र 10.1 जहाज महल, मांडू

राज्य मालवा पर नियंत्रण स्थापित कर लेता वह संपूर्ण उत्तर भारत पर अपना प्रभुत्व कायम करने के मार्ग पर पहला कदम उठा लेता था।

पंद्रहवीं सदी के दौरान मालवा राज्य अपने वैभव के उच्चतम शिखर पर था। राजधानी को धार से हटाकर मांडू ले जाया गया। वहाँ मालवा के शासकों ने बड़ी संख्या में इमारतें बनवाईं जिनके ध्वंसावशेष आज भी दर्शकों को प्रभावित करते हैं। यहाँ की स्थापत्य शैली गुजरात की शैली से भिन्न थी। मालवा शैली में विशालता थी जो इमारतों की कुर्सियों की ऊँचाई के कारण और भी विशाल दिखाई देती थी। बड़े पैमाने पर रंगीन तथा चिकनी टाइलों के इस्तेमाल से इमारत की छटा में विविधता आ जाती थी। जामा मस्जिद, हिंडोला महल और जहाजमहल वहाँ की सबसे विख्यात इमारतें हैं।

मालवा राज्य आरंभ से ही आंतरिक कलह से ग्रस्त रहा। गद्दी पर उत्तराधिकार के लिए झगड़े चलते ही रहते थे, ऊपर से अमीरों के अलग-अलग गुटों के बीच सत्ता और लाभ के लिए रस्साकशी होती रहती थी। पड़ौसी राज्य गुजरात और मेवाड़ इस गुटबाजी से अपना उल्लू सीधा करने के लिए हमेशा तैयार रहते थे।

मालवा के एक आरंभिक शासक हुशांगशाह ने धार्मिक सहिष्णुता की उदार नीति अपनाई। बहुत-से राजपूतों को मालवा में बसने को प्रोत्साहित किया गया। उदाहरण के लिए, मेवाड़ के राणा लोखा के दो भाइयों को मालवा में जागीरें दी गईं। इसी काल में निर्मित ललितपुर मंदिर के अभिलेखों से मालूम होता है कि मंदिरों के निर्माण पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं था। हुशांगशाह ने जैनों को, जो इस क्षेत्र के प्रमुख व्यापारी और साहूकार (बैंकर) थे, प्रश्रय दिया। मसलन, सफल सौदागर नरदेव सोनी हुशांग शाह का खजांची और सलाहकार था।

दुर्भाग्यवश मालवा के सभी शासक इतने सहिष्णु नहीं थे। महमूद खलजी (1436 ई-69 ई.) ने, जो मालवा के शासकों में सबसे अधिक शक्तिशाली माना जाता है, मेवाड़ के राणा कुंभा और पड़ोसी हिंदू राजाओं से अपने संघर्ष के दौरान बहुत-से मंदिरों को नष्ट कर दिया। यद्यपि उसकी इस कार्रवाई को उचित नहीं कहा जा सकता, तथापि इस तरह की ज्यादातर कार्रवाइयाँ लड़ाइयों के दौरान की गईं और उन्हें हिंदू मंदिरों के आम विनाश की किसी नीति का अंश नहीं माना जा सकता।

महमूद खलजी अधीर और महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। उसने लगभग सभी पड़ोसियों से लड़ाई की। इनमें गुजरात, गोंडवाना और उड़ीसा के राजा, बहमनी सुल्तान और यहाँ तक कि दिल्ली का सुल्तान भी शामिल था। लेकिन उसने सबसे ज्यादा जोर दक्षिण राजपूताना को हराने और मेवाड़ को परास्त करने में लगाया।

पंद्रहवीं सदी में मेवाड़ का उदय उत्तर भारत की राजनीति की एक महत्वपूर्ण घटना थी। अलाउद्दीन खलजी द्वारा रणथंभौर की विजय के बाद राजपूताना में चौहानों की शक्ति मिट गई थी। उसके ध्वंसावशेषों में से कई राज्यों का उदय हुआ। इन्हीं में से एक था मेवाड़ का राज्य, जिसकी राजधानी जोधपुर (1465 ई में स्थापित) में थी। इस क्षेत्र का एक दूसरा महत्वपूर्ण राज्य नागौर का मुस्लिम राज्य था। अजमेर पर, जोकि पहले मुसलमान सूबेदारों की सत्ता का केंद्र रहा था, कई बार अलग-अलग राज्य काबिज हो चुके थे और वह अब भी उदीयमान राजपूत राज्यों के बीच झगड़ों का कारण बना हुआ था। पूर्वी राजपूताना के स्वामित्व को लेकर भी झगड़ा था और दिल्ली के सुल्तान की उसमें गहरी दिलचस्पी थी।

मेवाड़ राज्य का प्रारंभिक इतिहास स्पष्ट नहीं है। यद्यपि उसका इतिहास आठवीं सदी से ही शुरू हो जाता है, लेकिन उसे एक प्रबल शक्ति का दर्जा दिलाने का श्रेय राणा कुंभा (1433 ई - 68 ई) को प्राप्त है। अपने आंतरिक प्रतिद्वंद्वियों को हराकर धीरे-धीरे अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाते हुए कुंभा ने बूँदी, कोटा और गुजरात सीमा पर स्थित डूँगरपुर को जीतने का अभियान छेड़ दिया। चूँकि कोटा मालवा की अधीनता मानता था और डूँगरपुर गुजरात की, इसलिए गुजरात और मालवा से उसकी टक्कर होना अनिवार्य था। इनमें संघर्ष के और भी कारण थे। राणा कुंभा ने नागौर पर भी आक्रमण कर दिया था और वहाँ के खान ने सहायता के लिए गुजरात के सुल्तान की गुहार की थी। राणा ने महमूद खलजी के एक प्रतिद्वंद्वी को अपने दरबार में शरण दी थी। उसे मालवा की गद्दी पर बैठाने की कोशिश भी की गई थी। बदले में सुल्तान ने भी राणा के कुछ शत्रुओं को प्रोत्साहन दिया था जैसा कि उसके भाई मोकल को।

अपने शासन के पूरे दौर में कुंभा गुजरात और मालवा से जूझने में व्यस्त रहा। साथ ही उसे मारवाड़ के राठौरों से भी निबटना पड़ा। मारवाड़ पर मेवाड़ का कब्जा था, लेकिन राव जोधा के नेतृत्व में संघर्ष करके उसने शीघ्र ही अपनी आज़ादी हासिल कर ली।

यद्यपि राणा पर चारों ओर से बुरी तरह दबाव पड़ रहा था, तथापि मेवाड़ में अपनी स्थिति को कायम रखने में वह काफी हद तक सफल रहा। गुजरात की सेना ने एक-दो बार कुंभलगढ़

पर घेरा अवश्य डाला और उधर महमूद ख़लजी भी अपनी सेना के साथ अजमेर तक पहुँच कर वहाँ अपना सूबेदार नियुक्त कर आया था। लेकिन राणा ने अंत में इन आक्रमणों को विफल कर दिया और अपने अधिकांश विजित प्रदेशों पर अपना अधिकार कायम रखा, जिसके अपवाद रणथंभौर जैसे कुछ दूरवर्ती इलाके थे। तमाम कठिनाइयों के बीच ऐसे दो शक्तिशाली राज्यों का सफलतापूर्वक सामना करना कुंभा की कोई साधारण उपलब्धि नहीं मानी जा सकती।

कुंभा विद्वानों को संरक्षण देता था और खुद भी एक अच्छा विद्वान था। उसने कई पुस्तकों की रचना की जिनमें से कुछ आज भी पढ़ने को उपलब्ध हैं। उसके राजमहल के ध्वंसावशेष और चित्तौड़ का उसका कीर्तिस्तंभ इस बात की साक्षी भरते हैं कि एक उत्साही निर्माता भी था। उसने सिंचाई के लिए कई झीलें और जलाशय खुदवाए। इस काल में बनाए गए कुछ मंदिरों को देखने से मालूम होता है कि तब भी संगतराशी, रक्षण आदि उच्च स्तर के थे।

गद्दी हासिल करने के लिए कुंभा के बेटे उदा ने उसकी हत्या कर दी। यद्यपि उदा को शीघ्र ही अपदस्थ कर दिया गया, किंतु वह अपने पीछे काफी बुरी मिसाल छोड़ गया था। भाइयों की जान के ग्राहक बने भाइयों के बीच चलने वाले लंबे संघर्ष के बाद 1508 ई. में कुंभा का एक पौत्र सांगा मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। कुंभा की मृत्यु और सांगा के सिंहासन रोहण के बीच के काल में सबसे महत्वपूर्ण बात यह हुई कि मालवा सल्तनत तेज़ी से बिखर चली वहाँ के सुल्तान द्वितीय महमूद की पूर्वी मालवा के शक्तिशाली राजपूत नेता से, जिसने महमूद को गद्दी हासिल करने में मदद दी थी,

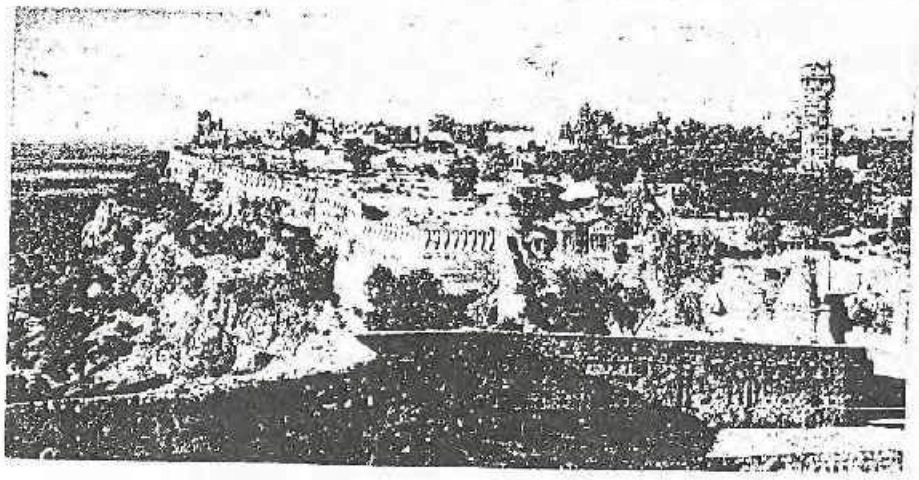

चित्र 10.2 चित्तौड़ दाहिनी ओर ऊपर कीर्ति-स्तम्भ को देखा जा सकता है

अनबन हो गई। महमूद द्वितीय ने गुजरात से सहायता की याचना की तो मेदिनी राय भी सांगा के दरबार में पहुँच गया। 1511 ई. में राणा एक लड़ाई में महमूद द्वितीय को हराकर बंदी के रूप में उसे चित्तौड़ ले गया। लेकिन कहते हैं, छह महीने के बाद महमूद के एक बेटे को बंधक रखकर राणा ने उसे मुक्त कर दिया। पूर्वी मालवा, जिसमें बंदेरी भी शामिल था, राणा के प्रभुत्व में आ गया।

दिल्ली के लोदी शासक इस परिस्थिति को बहुत दिलचस्पी के साथ देख रहे थे। मालवा की पराजय की घटना से वे चिंतित हो उठे। लोदी सुल्तान इब्राहिम लोदी ने मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया, लेकिन धटोली की लड़ाई में राणा सांगा से बुरी तरह हार कर वह दिल्ली लौट गया और वहाँ अपनी आंतरिक स्थिति को मज़बूत करने के काम में लग गया। इस बीच भारत के दरवाज़े पर बाबर दस्तक दे रहा था।

इस प्रकार 1525 ई. तक उत्तर भारत की राजनीतिक परिस्थितियाँ तेज़ी से बदलने लगी थीं और इस प्रदेश पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए एक निर्णायक युद्ध अवश्यंभावी प्रतीत हो रहा था।

उत्तर-पश्चिम और उत्तर भारत-शर्की, लोदी सुल्तान तथा कश्मीर

जैसा कि हम देख चुके हैं, तैमूर के हमले के बाद सुल्तान महमूद तुगलक दिल्ली से भाग खड़ा हुआ था। उसने पहले तो गुजरात में शरण ली थी और फिर मालवा में। जब उसने लौटने का फैसला किया तब तक दिल्ली की गद्दी की इज्ज़त मिट्टी में मिल चुकी थी। खुद दिल्ली के पास-पड़ोस में महत्वाकांक्षी अमीरों और जमींदारों ने अपनी आज़ादी की घोषणा कर दी थी।

गंगा की घाटी में अपनी आज़ादी की घोषणा सबसे पहले करने वालों में एक था मलिक सरवर जो फिरोज़शाह तुगलक के समय का एक प्रमुख अमीर था। मलिक सरवर कुछ समय तक वज़ीर रहा था और उसके बाद उसे मलिक-उस-शर्क (पूर्व के स्वामी) के खिताब के साथ सल्तनत के पूर्वी क्षेत्र का शासक बना दिया गया था। उसके इस खिताब के कारण ही उसके उत्तराधिकारी शर्की कहलाए। शर्की सुल्तानों ने जौनपुर को (पूर्वी उत्तर प्रदेश में) अपनी राजधानी बनाया और उसे शानदार इमारतों, मस्जिदों और मकबरों से सजाया। अब इन मस्जिदों और मकबरों में से कुछ ही बच रहे हैं। उनसे पता चलता है कि शर्की सुल्तानों ने दिल्ली की स्थापत्य शैली की अंधाधुंध नकल नहीं की बल्कि अपनी एक अलग शैली विकसित की जिसकी विशेषता ऊँचे-ऊँचे सिंहद्वार और विशालकाय मेहराबों से प्रकट होती है।

शर्की सुल्तानों ने विद्वत्ता और संस्कृति को भरपूर संरक्षण दिया। जौनपुर में कवियों और साहित्यकारों, संतों और विद्वानों का जमघट-सा लगा रहता था। कालांतर में जौनपुर को "पूरब का शिराज़" कहा जाने लगा। प्रसिद्ध हिंदी महाकाव्य 'पद्मावत' का रचयिता मलिक मुहम्मद जायसी जौनपुर का ही निवासी था।

शर्की सल्तनत सौ साल से भी कुछ कम समय तक ही कायम रही। अपने उत्कर्ष काल में यह पश्चिम उत्तर प्रदेश में अलीगढ़ से लेकर उत्तर

बिहार में दरभंगा तक और उत्तर में नेपाल की सीमा से लेकर दक्षिण में बुंदेलखंड तक फैली हुई थी। शर्की सुल्तान दिल्ली को जीतने के लिए बहुत आतुर थे लेकिन उनका यह मनसूबा पूरा नहीं हो सका। पंद्रहवीं सदी के मध्य में दिल्ली की गद्दी पर लोदियों के आसीन होने के बाद से शर्की सुल्तानों को धीरे-धीरे आक्रामक तेवर की बजाय रक्षात्मक रुख अपनाना पड़ा। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के ज्यादातर इलाके उनके हाथों से निकल गए और दिल्ली पर उन्होंने बार-बार ज़ोरदार लेकिन नाकामयाब हमले किए जिनसे उनकी शक्ति बिल्कुल चूक गई। अंत में 1484 ई. में सुल्तान बहलोल लोदी ने जौनपुर को जीतकर शर्की राज्य को दिल्ली सल्तनत में मिला लिया। शर्की सुल्तान कुछ समय तक चुनार में निर्वासित जीवन बिताता रहा और अपने खोए हुए राज्य को वापस पाने की कई कोशिशों के नाकाम हो जाने के बाद टूटा हुआ दिल लेकर दुनिया से चल बसा।

दिल्ली में सरकार के ठप्प हो जाने के बाद शर्की सुल्तानों ने एक विस्तृत क्षेत्र में शांति सुव्यवस्था कायम रखी। उन्होंने बंगाल के शासकों को पूर्वी उत्तर प्रदेश में अपने राज्य का विस्तार करने से रोके रखा। सबसे बढ़कर तो उन्होंने एक ऐसी सांस्कृतिक परंपरा स्थापित की जो शर्की सल्तनत के विघटन के बाद भी काफी लंबे समय तक कायम रही।

तैमूर के आक्रमण के बाद दिल्ली में एक नए राजवंश का उदय हुआ। यह था सैयद राजवंश। कई अफ़गान सरदारों ने पंजाब में अपनी सत्ता कायम कर ली थी। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण था बहलोल लोदी, जिसे सरहिंद का इक्ता बख्शा गया था। बहलोल ने साल्ट रेंज में रहने वाले खोखर नामक दुर्धर लड़ाका कबीले के लोगों की बढ़ती हुई शक्ति पर अंकुश लगाया। शीघ्र ही पूरे पंजाब पर उसका दबदबा कायम हो गया। जब दिल्ली के सुल्तान ने उसे मालवा के सुल्तान के आसन्न आक्रमण के खिलाफ़ मदद देने के लिए दिल्ली बुलाया तो बहलोल दिल्ली में ही जमकर बैठ गया। शीघ्र ही उसके लोगों ने दिल्ली पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। दिल्ली का सुल्तान निर्वासित जीवन बिताने को मज़बूर हो गया। उसकी मृत्यु के बाद 1451 ई. में बहलोल ने विधिवत् सुल्तान का ताज धारण कर लिया।

पंद्रहवीं सदी के मध्य से ऊपरी गंगाघाटी और पंजाब पर लोदियों का प्रभुत्व कायम रहा। दिल्ली के इससे पहले के सभी सुल्तान तुर्क थे, लेकिन लोदी अफ़गान थे। यद्यपि दिल्ली सल्तनत की सेना में अफ़गानों की संख्या अच्छी खासी थी तथापि बहुत कम अफ़गान सरदारों को महत्वपूर्ण स्थान दिए गए थे। उत्तर भारत में अफ़गानों के बढ़ते हुए महत्व का प्रमाण मालवा में अफ़गान शासन का उदय था। दक्षिण में बहमनी राज्य में वे महत्वपूर्ण पदों पर आसीन थे।

बहलोल लोदी को अपनी ताकत का इस्तेमाल मुख्य रूप से शर्की शासकों को सर करने में करना पड़ा। स्वयं को कमज़ोर स्थिति में पाकर बहलोल ने शाह के अफ़गानों को भारत आने को निमंत्रित किया ताकि "वे गरीबी के कलंक से छुटकारा पा जाएँगे और मेरे प्रभुत्व की अभिवृद्धि होगी।" अफ़गान इतिहासकार अब्बास सरवानी यह भी बताता है कि "इस फ़रमान को पाकर रोह के अफ़गान सुल्तान बहलोल की सेवा में दाखिल होने के लिए टिड्डी दल की तरह उमड़ आए"।

हो सकता है, इसमें कुछ अतिरंजना हो। लेकिन अधिक संख्या में अफ़गानों के आने से बहलोल लोदी ने न केवल शर्कियों को हराने में कामयाबी हासिल की, बल्कि उससे भारत में मुस्लिम समाज का रंग-रूप भी बदल गया। अब अफ़गान उस समाज के एक बहुसंख्यक और महत्वपूर्ण तत्व बन गए – दक्षिण भारत में भी और उत्तर में भी।

लोदी सुल्तानों में सबसे बड़ा सिकंदर लोदी (1489 ई – 1517 ई.) हुआ। गुजरात के महमूद बेगढ़ा और मेवाड़ के राणा सांगा के समकालीन सिकंदर लोदी ने इन ताकतों के साथ भावी संघर्ष के निमित्त दिल्ली सल्तनत को तैयार करना शुरु कर दिया। उसने कबायिली स्वतंत्रता की प्रबल भावना से अनुप्राणित अफ़गान सरदारों को, जो सुल्तान के समकक्षों के समूह में प्रथम से अधिक कुछ मानने को तैयार नहीं थे, रास्ते पर लाने की कोशिश की। अपने श्रेष्ठ स्थान का अहसास कराने के लिए सिकंदर ने अपनी उपस्थिति में इन सरदारों को खड़े रहने के लिए मज़बूर किया। जब कोई शाही फ़रमान भेजा जाता था तो सभी सरदारों को आदरपूर्वक उसे ग्रहण करने के लिए शहर से बाहर आना पड़ता था। जिनके पास जागीरें थीं उन्हें नियमित रूप से हिसाब-किताब देना पड़ता था। गबन या भ्रष्टाचार करने वालों को सख्त सजा दी जाती थी। लेकिन सरदारों को नियंत्रित करने में सिकंदर लोदी को सीमित सफलता ही मिली। बहलोल लोदी ने अपनी मृत्यु के समय अपने राज्य को अपने बेटों और रिश्तेदारों के बीच बाँट दिया था। यद्यपि कठिन संघर्ष के बाद सिकंदर ने इस बँटवारे को खारिज कर दिया था तथापि शासक के बेटों के बीच साम्राज्य के विभाजन की कल्पना अफ़गानों के बीच कायम रही थी।

सिकंदर लोदी ने अपने राज्य में कुशल प्रशासन की स्थापना की। न्याय पर उसका बहुत ज़ोर रहता था। साम्राज्य के सभी मुख्य मार्गों को डाकुओं और लुटेरों से मुक्त कर दिया गया था। सभी आवश्यक वस्तुओं की कीमतें काफी कम थीं। सुल्तान, कृषि के मामले में गहरी दिलचस्पी लेता था। उसने अनाजों पर से चुंगी हटा दी। उसने पैमाइश का एक नया पैमाना शुरू किया जो गज़-ए. सिकंदरी कहलाता था। यह पैमाना मुगलकाल तक प्रचलित रहा। उसके समय में लगानों की जो सूचियाँ तैयार की गईं उनका इस्तेमाल बाद में शेरशाह के समय में तैयार की गई सूचियों के लिए आधार के तौर पर किया गया।

सिकंदर लोदी एक कट्टर, बल्कि धर्मांध शासक माना जाता है। उसने मुसलमानों को शरीअत के खिलाफ़ जाने वाली रीति-रिवाज़ों पर चलने से सख्ती से मना कर दिया। उदाहरण के लिए स्त्रियों को पीरों की मज़ारों पर जाने या उनकी याद में जलूस निकालने की मनाही कर दी गई। उसने हिंदुओं पर फिर से जज़िया लगा दिया और एक ब्राह्मण को इस कारण मृत्युदंड दिया कि उसने हिंदुओं और मुसलमानों – दोनों के धर्मग्रंथों को समान रूप से पवित्र बताया था। अपने सैनिक अभियानों के दौरान उसने कुछ प्रसिद्ध हिंदू मंदिरों को भी तोड़ा – जैसे नगरकोट के मंदिर को।

सिकंदर लोदी ने विद्वानों, तरबियाकों और साहित्यकारों को बड़े-बड़े इनाम बख्शीश दिए जिससे

जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से जुड़े अलग-अलग देशों के सुसंस्कृत लोग उसके दरबार में इकट्ठे हुए। इनमें अरब और ईरान के लोग भी शामिल थे। सुल्तान के प्रयत्नों से संस्कृत की कई कृतियाँ फ़ारसी में अनूदित की गईं। संगीत में भी उसकी रुचि थी और उसने संगीत पर संस्कृत की कई रचनाओं का फ़ारसी में अनुवाद करवाया। उसके काल में बहुत-से हिंदुओं ने फ़ारसी पढ़ना शुरू कर दिया। फ़ारसी के जानकार हिंदुओं को प्रशासनिक पदों पर नियुक्त किया गया।

इस प्रकार हिंदुओं और मुसलमानों के बीच सांस्कृतिक समागम की प्रक्रिया सिकंदर के शासनकाल में तेज़ी से चलती रही। सिकंदर लोदी ने धौलपुर और ग्वालियर को जीत कर अपने राज्य का भी विस्तार किया। इन्हीं सैनिक कार्रवाइयों के दौरान सिकंदर लोदी ने सावधानी के साथ सर्वेक्षण करके और पूरे सोच-विचार के बाद आगरा नगर के ठिकाने का चयन 1506 ई. में किया। इस नगर को बसाने के पीछे प्रयोजन यह था कि यहाँ से पूर्वी राजस्थान के प्रदेशों और मालवा तथा गुजरात को जाने वाले मार्गों पर नियंत्रण रखा जा सकता था। कालांतर से आगरा एक विशाल नगर और लोदियों की दूसरी राजधानी बन गया।

पूर्वी राजस्थान और मालवा में सिकंदर लोदी की बढ़ती हुई दिलचस्पी का प्रमाण तब स्पष्ट हो गया जब उसने नागौर के खान को अपने संरक्षण में ले लिया और रणथंभौर से मालवा की बजाय दिल्ली की प्रभुता स्वीकार करने को कहा। उसके उत्तराधिकारी इब्राहिम लोदी ने तो मेवाड़ पर एक हमला भी किया। लेकिन जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, उसे विफल होकर वापस लौटना पड़ा। मालवा में राणा की बढ़ती हुई शक्ति और आगरा तथा बयाना की ओर उसके प्रभुत्व का विस्तार मेवाड़ तथा लोदियों के बीच भारी टकराव का संकेत दे रहे थे। यदि बीच में बाबर नहीं आ खड़ा हुआ होता तो इस टकराव का नतीजा क्या होता, कहना कठिन है।

कश्मीर राज्य के ज़िक्र के बिना पंद्रहवीं सदी में उत्तर भारत का कोई भी विवरण पूर्ण नहीं माना जा सकता। कश्मीर की सुंदर घाटी दीर्घकाल से सभी बाहरी लोगों के लिए वर्जित थी। अलबरूनी के अनुसार, कश्मीर में ऐसे हिंदुओं को भी प्रवेश नहीं करने दिया जाता था जो वहाँ के सरदारों से व्यक्तिगत रूप से परिचित नहीं थे। उस काल में कश्मीर शैव धर्म के केंद्र के रूप में विख्यात था। लेकिन चौदहवीं सदी के मध्य के आसपास हिंदू शासन की समाप्ति के साथ स्थिति बदल गई। मंगोल नायक दलूचा द्वारा 1320 ई. में कश्मीर पर किया गया हमला हिंदू शासन के अंत का आरंभ था। कहते हैं कि दलूचा ने पुरुषों का कत्लेआम कर देने का हुक्म दिया और उनकी स्त्रियों और बच्चों को गुलाम बना कर मध्य एशिया के व्यापारियों के हाथों बेच दिया। शहरों और गाँवों को लूटा गया और उनमें आग लगा दी गई। असहाय कश्मीर सरकार ने इन कारनामों का कोई विरोध नहीं किया जिसके परिणामस्वरूप वह जनता की सारी सहानुभूति और समर्थन खो बैठी।

मंगोल हमले के सौ साल बाद ज़ैनुल आबिदीन कश्मीर की गद्दी पर बैठा। उसे कश्मीर के मुसलमान शासकों में सबसे बड़ा माना जाता है। इस बीच कश्मीरी समाज काफी बदल चुका था। मध्य एशिया के मुसलमान संत और शरणार्थी लगातार

कश्मीर पहुँचते रहे थे। बारामूला का रास्ता उन्हें कश्मीर आने की सुविधा प्रदान करता था। एक और नई बात यह हुई कि यहाँ सूफी संतों की एक सुदीर्घ शृंखला का उदय हुआ। ये लोग ऋषि कहलाते थे। उनके व्यक्तित्व में हिंदुत्व और इस्लाम की कुछ-कुछ विशेषताओं का समाहार था। कुछ तो उनके धर्मोपदेश के कारण और कुछ बल प्रयोग की वजह से आबादी का निचला तबका मुसलमान बन चुका था। सिकंदरशाह के शासनकाल (1389 ई. - 1413 ई.) में ब्राह्मणों पर अत्याचार किया जाना शुरू हुआ। सुल्तान ने हुक्म जारी किया कि या तो सभी ब्राह्मण और पढ़े-लिखे हिंदू मुसलमान बन जाएँ या घाटी छोड़कर चले जाएँ। सुल्तान के हुक्म के मुताबिक हिंदुओं के मंदिरों को धूल में मिला देना था और सोने-चाँदी की प्रतिमाओं को गलाकर उनसे सिक्के ढालने थे। कहते हैं कि यह हुक्म राजा के मंत्री सुहा भट्ट की सलाह पर जारी किया गया जिसने हिंदू धर्म का त्याग करके इस्लाम को अपनाया था और अब अपने पूर्व सहधर्मियों को सता रहा था।

ज़ैनुल आबिदीन (1420 ई.-70 ई.) की गद्दी-नशीनी के साथ यह स्थिति बदल गई। उसने उक्त सभी आदेशों को रद्द करवा दिया। उसने कश्मीर छोड़ कर चले जाने वाले सभी गैर-मुसलमानों को समझा-बुझाकर वापस बुलाया। जो लोग फिर से हिंदू धर्म में वापस जाना चाहते थे या जिन्होंने सिर्फ अपनी जान बचाने के लिए मुसलमान होने का दिखावा किया था उन्हें अपनी इच्छानुसार चाहे जिस धर्म को मानने की छूट दे दी गई। उसने हिंदुओं के पुस्तकालय उन्हें वापस कर दिए और उन्हें पहले जो अनुदान मिलते थे उन्हें फिर से चालू करवा दिया। उनके मंदिर भी उन्हें वापस कर दिए गए। सौ साल से अधिक समय बाद अबुलफ़ज़ल ने लिखा कि कश्मीर में डेढ़ सौ भव्य मंदिर हैं। संभव है, इनमें से अधिकांश ज़ैनुल आबिदीन के शासनकाल में नए सिरे से बनवाए गए हों।

ज़ैनुल आबिदीन ने सहिष्णुता और उदारता की नीति को अन्यान्य क्षेत्रों में भी लागू कर दिया। उसने जज़िया और गोवध बंद करवा दिया और हिंदुओं की इच्छा का आदर करते हुए सती प्रथा पर लगी पाबंदी उठा ली। उसकी सरकार में हिंदू कई ऊँचे पदों पर आसीन थे। उदाहरण के लिए, श्रीया भट्ट न्याय विभाग का मंत्री और दरबारी वैद्य था। सुल्तान की पहली दो रानियाँ हिंदू थीं - जम्मू के राजा की बेटियाँ। उसके चारों बच्चों की माँ यही दोनों रानियाँ थीं। उनकी मृत्यु के बाद उसने तीसरा विवाह किया।

खुद सुल्तान काफी पढ़ा-लिखा था और कविता लिखता था। वह फ़ारसी, कश्मीरी, संस्कृत और तिब्बती भाषाओं में पारंगत था। उसने संस्कृत और फ़ारसी के विद्वानों को संरक्षण दिया। उसके आदेश पर संस्कृत की कई रचनाओं का फ़ारसी में अनुवाद किया गया। इनमें महाभारत के अलावा कल्हण द्वारा लिखा गया कश्मीर का इतिहास राजतरंगिणी भी शामिल थी। इस ग्रंथ का केवल अनुवाद ही नहीं किया गया, बल्कि उसे अद्यतन भी बनाया गया। वह संगीत का प्रेमी था और जब ग्वालियर के राजा को इसकी जानकारी मिली तो उसने संगीत पर दो दुर्लभ कृतियाँ उसे भेंट के तौर पर भेजीं।

सुल्तान ने कश्मीर के आर्थिक विकास की ओर भी ध्यान दिया। उसने दो व्यक्तियों को

कागज़ बनाने और जिल्दसाज़ी की कला सीखने के लिए समरकंद भेजा। उसने कश्मीर में कई शिल्पों को बढ़ावा दिया - जैसे पत्थर काटना और पत्थर पर पालिश करना, बोतल बनाना, स्वर्णकारी आदि। उसने शाल बनाने की कारीगरी को भी बढ़ावा दिया जिसके लिए कश्मीर आज भी इतना प्रसिद्ध है। कश्मीर में कट्टे बनाने और आतिशबाज़ी की कला का भी विकास हुआ था। सुल्तान ने बड़ी संख्या में बाँध, नहरें और पुल बनवाकर कृषि को उत्तेजन दिया। वह एक उत्साही निर्माता भी था। जैना लंका उसकी अभियंतन (इंजिनियरिंग) संबंधी उत्कृष्ट उपलब्धि थी। यह वुलर झील में तैयार कृत्रिम द्वीप था जिस पर उसका राजमहल और मस्जिद बनवाई गई थी।

जैन-उल-आबिदीन को कश्मीरी आज भी बड़शाह (बड़ा शाह) कहते हैं। वह कोई महान योद्धा तो नहीं था, फिर भी उसने लद्दाख पर मंगोल हमले को नाकाम कर दिया। उसने बाल्टिस्तान क्षेत्र (जिसे तिब्बत-इ-खुर्द कहा जाता था) को जीता और जम्मू, रजौरी वगैरह पर अपना नियंत्रण कायम रखा। इस प्रकार उसने कश्मीरी राज्य का एकीकरण किया।

पंद्रहवीं सदी के घटनाक्रम के इस संक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है कि क्षेत्रीय शक्ति-संतुलन भारत को न तो शांति दे सका और न स्थिरता। परंतु क्षेत्रीय राज्यों ने सांस्कृतिक विकास में भरपूर योगदान किया। इन राज्यों में बहुधा स्थानीय परंपराओं के आधार पर स्थापत्य की स्थानीय शैलियाँ विकसित की गईं। स्थानीय भाषाओं को भी प्रश्रय दिया गया। कुल मिलाकर, इन राज्यों में उदारता और सांस्कृतिक एकीकरण की शक्तियाँ सक्रिय रहीं और कहा जा सकता है कि कुछ शासकों ने उस रास्ते पर पहला कदम बढ़ा दिया था जिस पर अगली सदी में अकबर चला।

अभ्यास

1. निम्नलिखित शब्दों तथा अवधारणाओं का अर्थ स्पष्ट कीजिए :
   फ़रमान, पूर्व का शिराज़, मदरसा
2. स्पष्ट कीजिए कि पंद्रहवीं सदी में मालवा किस प्रकार उत्तर भारत पर स्वामित्व प्राप्त करने के संघर्ष का केंद्र था।
3. स्थापत्य और बंगला भाषा के क्षेत्रों में बंगाल के सुल्तानों के योगदान का वर्णन कीजिए।
4. बंगाल के स्वतंत्र राज्य के विकास के इतिहास का वर्णन कीजिए। 200 वर्षों तक उसकी स्थिरता के कारणों पर प्रकाश डालिए।
5. उड़ीसा के गजपति शासकों की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।
6. गुजरात के स्थापत्य की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
7. पंद्रहवीं सदी में मेवाड़ के उदय का इतिहास बताइए और राणा कुंभा की उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए।
8. शर्की सुल्तान विद्या और संस्कृति के महान् संरक्षक थे, यह बात किन साक्ष्यों से सिद्ध होती है?

9. जैनुल आबिदीन को कश्मीर का महान् सुल्तान क्यों माना जाता है, स्पष्ट कीजिए।
10. भारत के मानचित्र की रूपरेखा पर निम्नलिखित का निर्देश कीजिए :
    जौनपुर, अहमदाबाद, मांडू, चित्तौड़गढ़, मेवाड़।
11. "गुजरात, जौनपुर और बंगाल में स्थापत्य-कला" विषय पर एक परियोजना तैयार कीजिए। परियोजना में निम्नलिखित क्रियाएँ की जा सकती हैं :
    (क) गुजरात, जौनपुर और बंगाल की स्थापत्य-कलाओं की खास विशेषताओं का वर्णन करते हुए उन पर संक्षिप्त आलेख तैयार करना।
    (ख) विभिन्न क्षेत्रों में बनाई गई इमारतों की तस्वीरों का अलबम तैयार करना। हर तस्वीर के नीचे उसके निर्माण के काल, उसके निर्माता शासक और उसकी खास विशेषताओं का उल्लेख होना चाहिए।